International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 03, No. 02(I), April - June, 2021, pp.139-145

मारवाड़ चित्र शैली वीर रस के संदर्भ में

संगीता भाटी*

सार

राजस्थान प्रदेश का आधा भाग मरूस्थल से अटा पड़ा है। बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, नागौर तथा शेखावटी का कुछ भाग टीबों और धोरों की संस्कृति का प्रतीक है। इस मरूप्रदेश में जनजीवन जितना कठिन है, यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा उतनी ही आश्चर्य चकित कर देने वाली है। मेवाड़ की भाँति मरूप्रदेश ने भी अजन्ता शैली की परम्परा का निर्वाह किया, जिसका पूर्व स्वरुप मण्डोर के द्वारों से आँका जा सकता है। पश्चिमदिस्त्रों में राम और रहीम, गोरख और गेसू, पीर और मीर एवं अल्ला और अकबर में कोई भेद नहीं माना गया है। और इसी रुप में राजस्थान में धर्म की नई प्रवृत्ति का पूर्व रुप लोक देवों के प्रादुर्भाव में प्रतिध्वनित होता दिखाई देता है। राजस्थान में लोक देव की आराधना ने नई प्रवृत्ति का स्वरुप धारण किया। जिन महापुरुषों ने त्याग और आत्म बलिदान ने अपनी मातृभूमि की सेवा की या नैतिक जीवन और लोकोप्रकार की वृत्ति अपनाई तो समाज ने उनको देवत्व का स्थान दिया। और इन पंथों में एक आध्यात्मिक स्वर था जिसमें जिज्ञासु एवं भ्रान्तों के लिए शान्ति का मार्ग सुलभ हो सका। लोक देवों के अतिरिक्त साहित्यों ने भी राजपूत युग के शौर्य तथा जनजीवन की झांकी प्रस्तुत की है जिसमें चारण साहित्य प्रमुख है इसमें वीर और श्रृंगार रस की प्रधानता रही है। इसके प्रसंग युद्धों तथा शौर्य के आख्यानों पर आधारित है। इसमें नारी जीवन, त्याग, बलिदान को बड़े भावनात्मक वेग से वर्णित किया है। रम्मत, ख्याल में अनेक वीरों की कहानियाँ इस तरह समाविष्ट है कि वे वीर रस प्रधान होते हुए भी अन्य रसों को व्यक्त करने में पीछे नहीं।राजस्थानी चित्रकला का विकास एवं समृद्धि केवल एक अथवा दो केन्द्रों पर न होकर अनेक दरबारी नगरों, राजधानियों, मन्दिरों तथा सामन्तों के ठिकानों पर हुआ। धार्मिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त दरबारी कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों, शिल्पाचार्यी आदि के सहयोग से राजस्थानी चित्रकला अनेक रियासती शैलियों और उपशैलियों में विकसित हो सकी।

शब्कोशः *मरूस्थल, मरूप्रदेश, लोकदेव, त्याग–बलिदान, साहित्य, शैली, कथा–कहानियाँ, शौर्य।*

प्रस्तावना

राजस्थान प्रदेश का आधा भाग मरूस्थल से अटा पड़ा है बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, नागौर तथा शेखावटी का कुछ भाग टीबों ओर धोरों की संस्कृति का प्रतीक है। इस मरूदेश में जनजीवन जितना ही कठिन है यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा उतनी ही आश्चर्य चकित कर देने वाली है। अधिकांशतः राठौरों की इस धरती में चित्रकला की जो परम्परा पनपी और विकसित हुई है वह मारवाड़ स्कूल की चित्रकला के नाम से जानी जाती है। मेवाड़ की भाँति मरूप्रदेश ने भी अजन्ता शैली की परम्परा का निर्वाह किया जिसका पूर्व स्वरुप मण्डौर के द्वारों से आँका जा सकता है।[1]

* शोध छात्रा, चित्रकला, राजकीय महाविद्यालय, टोंक, राजस्थान।

राजस्थान की चित्रकला का विकास दूसरी शैलियों के अनुरुप कुछ कलाकारों द्वारा एक ही स्थान पर नहीं किया गया, बल्कि राजस्थान के जितने भी प्राचीन नगर, राजधानियों, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान है वहाँ चित्रकला पनपी और विकसित हुई इसलिए राजाओं धर्माचार्यों, दरबारी, कवियों, मुसब्बिरो, संगीतज्ञों, शिल्पकारों आदि के पारस्परिक आदान–प्रदान से राजस्थानी चित्रकला की अजस्रधारा को शैलियों, उपशैलियों को विकसित करती हुई 17वीं, 18वीं सदी में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची जिससे इसका समन्वित रुप सामने आया। इसके विराट परिवेश में अनेक शाखएँ व उपशाखाएँ समविष्ट है। राजस्थान के विभिन्न भागों पर मध्यकाल में राजपूत वीरों ने अपना अधिकार कर लिया। सम्पूर्ण भाग को अपने–अपने वंश या स्थान विशेष के अनुरुप नामों से प्रसिद्धी मिली और उन्हें विविध राज्यों की संज्ञा दी गई।[2] मारवाड़ पर मेवाड़ का राजनीतिक प्रभुत्व रहा और लगभग महाराजा मोकल के काल से लेकर राणा सांगा के समय तक मारवाड़ में मेवाड़ शैली के चित्र बनते रहे। मालदेव के सैनिक प्रभाव ने (1532–68) ई. इस प्रभाव को कम कर मारवाड़ शैली का स्वतंत्र स्वरुप बनाया। इस प्रणाली के आधार पर उत्तराध्यान सूत्र का 1591 ई. में चित्रण किया गया जो बड़ोदा संग्रहालय में सुरक्षित है। मालदेव के सैनिक रुचि की अभिव्यक्ति चोखेला महल जोधपुर की वल्लियों और छतों के चित्रों से स्पष्ट है जिसमें राम रावण युद्ध तथा सप्तशती के अनेक अवतरणों को चित्रित किया गया। चेहरों की बनावट भावपूर्ण दिखाई गई है।

मारवाड़ शैली से सम्बन्धित बीकानेर शैली भी है जिसका समृद्ध रुप अनुपसिंह के राज्यकाल में दिखाई देता है। उसके समय प्रसिद्ध कलाकारों में रामलाल, अलीराजा, हसन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। प्राचीन मारवाड़ एवं राठौड़ वंशी जोधा द्वारा स्थापित जोधपुर राज्य और वहाँ के विभिन्न ठिकानों में पल्लवित होने वाली चित्रकला मारवाड़ या जोधपुर शैली के नाम से जानी जाती है।

राजा सूरजसिंह का समय (1595–1620) था। यह एक कला प्रेमी राजा था। उनके समय के कलापूर्ण ऐतिहासिक सचित्र ग्रन्थों में ढोला मारू तथा भागवत का प्रमुख स्थान है। सन् 1610 ई. में चित्रित यह भागवत पुराण मारवाड़ की अनेक स्थानीय विशेषताओं से युक्त है।[3]

मारवाड़ क्षेत्र में चित्रकला का वैभव मूलतः जोधपुर की दरबारी शैली के रुप में देखा जा सकता है किन्तु इसके अतिरिक्त पाली, नागौर, धाणेराव, जैसलमेर तथा अजमेर के कुछ भागों में भी इसका अत्यधिक प्रभाव रहा है।

मारवाड़ क्षेत्र में कला आचार्य श्रंगधर जो मरुदेश के राजा शील के आश्रय में थे उनके द्वारा विकसित शैली को पश्चिमी भारतीय कला शैली नाम दिया गया है। यह शील सम्भवतः मण्डोवर का प्रतिहार राजा शिलुक था; नगर (जिला टोंक) के वि.स. 743 एवं पिण्डवाड़ा के वि.स. 744 के लेखों में शिल्पियों के उल्लेख मिलते हैं जिनमें शिल्पी शिवनांग को साक्षात पितामह भी कहा गया है।

इनमें जैसलमेर भण्डार में संग्रहित दशवैकालिक सूत्र चूर्ण्णि एवं ओधनिर्युक्ति (1060) ई. विशेष रुप से उल्लेखनीय है इन्हें नागपाल के वंशज आनन्द ने आलेख्यकार पाहिल से निर्मित कराया।

खरतरगच्छ पटटावली एवं पृथ्वीराज विजय में दिये गये वर्णन के अनुसार उस समय चित्रकला का व्यापक प्रसार था। पृथ्वीराज के महल में चित्र मण्डप बना हुआ था जिसमें रामायण एवं कई वृत्त शिकार के दृश्य चित्रित किये हुए थे। तिलोतमा के वृत्तचित्र को देखकर पृथ्वीराज आश्चर्य चकित रह गया था। इस चित्र मंडप का उल्लेख समकालीन फारसी ग्रन्थों एवं प्रबन्ध चिन्तामणि में किया गया है।

अतः मारवाड़ के चित्रों में शैलीगत विकास अपभ्रंश शैली से प्रारम्भ होता है यहीं से राजस्थानी चित्रकला का स्वरुप निर्धारित होने लगता है जो क्रमशः क्षेत्रीय आधार पर अलग–अलग रुपों में मिलता है। इसका अध्ययन करने पर केवल मारवाड़ क्षेत्र में ही अनेक उप शैलियाँ विकसित होती दिखाई देती है।[4]

राजस्थानी चित्रकला में किशनगढ़ शैली का विशिष्ट स्थान है। किशनगढ़ राज्य की नींव जोधुपर राज्य के राठौरवंशी राजा उदयसिंह के आठवें पुत्र किशन सिंह ने सन् 1609 में डाली।

मारवाड़ शैली की उन्नत शाखा किशनगढ़ शैली ने एक शतक उपरान्त राजा सावन्तसिंह (1699–1764) के समय में अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर राजस्थानी चित्रकला में अपना मौलिक एवं उत्कृष्ट स्थान बना लिया। सुदुर मरूप्रदेश के राव बीकाजी द्वारा स्थापित बीकानेर राज्य अनेक बाल–प्रभावों के उपरान्त भी कलात्मक दाय की दृष्टि से अपना मौलिक स्थान रखता है। महाराजा अनुपसिंह से इस शैली का निश्चित स्वरुप उपलब्ध होता है उनकी साहित्यिक सांस्कृतिक और कलात्मक देन बीकानेर की कला के इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ से जोड़ती है। रूक्नुद्दीन, नूरूद्दीन, उस्ताद हसन, उस्ताद अहमद, मुराद हसन, रजाक आदि का नाम उल्लेखनीय है।[5]

मारवाड़ की चित्रण परम्परा के सन्दर्भ में इसका गहराई से अध्ययन करें तो इसे दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं। प्रथम कला पक्ष, द्वितीय भाव पक्ष। जहाँ एक ओर कला के पक्ष के अन्तर्गत उस चित्र में प्रयुक्त रेखा, रंग, रुप, आकार एवं अन्तराल को विश्लेषित किया जाता है, वहीं दूसरी ओर भाव पक्ष के अन्तर्गत उस चित्र में अपनी भावनाओं को चित्रकार ने जिस चर्मोत्कर्ष पर पहुँचाया उसमें विचार, भावना एवं अंतज्ञान को महत्त्व देते हैं जिससे कि दर्शक में संवेदनात्मक भावों की अभिवृद्धि हो जाती है साथ ही इसमें ग्रहण शक्ति तथा अभिव्यंजना के कलात्मक आधार स्वतः विकसित होते दिखाई देते हैं। मारवाड़ के चित्रकारों की कलाकृतियों में कला के शास्त्रीय मानदण्ड को समझने का प्रयास करने पर मैंने पाया कि यहाँ 10वीं शताब्दी से क्रमशः लोक जीवन के साथ ही यहाँ की कला प्रमुख ''आकार सिद्धान्त'' तथा भावों के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादित करने में सहायक रहती है।[6] पश्चिमादिस्त्रोत में राम और रहीम, गोरख और गेसू, पीर और मीर एवं अल्ला अकबर में कोई भेद नहीं माना गया है। यह हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति सामजस्य विचारों में साम्य और भावों में उदरता का प्रतीक है।

लोकदेव

राजस्थान में इस धर्म की नई प्रवृत्ति का पूर्व रुप लोक देवों के प्रादुर्भाव में प्रतिध्वनित होता दिखाई देता है। धार्मिक पाखण्डों से अलग होकर किस प्रकार आराधना का मार्ग प्रशस्त बनाया जा सकता है वह जनसाधारण की धार्मिक आस्था में देखा जा सकता है, ऐसी आराधना का स्वरुप हम प्राचीनकाल से यहाँ के निवासियों की निष्ठा में देखते हैं जिनमें न कोई शास्त्रों के पचड़े हैं और न रहस्यमयी धार्मिक प्रक्रियाएँ। बजाय कर्मकाण्ड व यज्ञों में आस्था होने से उनका विश्वास यक्ष, वृक्ष और पशुओं की अर्चना में था। यक्षों को कुर देव की संज्ञा देने से उनको प्रसन्न रखने के लिए कई प्रकार की स्थानीय सामग्रियों से प्रसन्न रखने की आरधना प्रचलित थी। आगे चलकर जैन या उज्जैन मन्दिर बनने लगे। यक्ष और यक्षिरिणयों को लोक देव संज्ञा में स्थापित किया जाने लगा वैसे तो कई जैनाचार्यों ने यक्ष पूजा का खण्डन किया है परन्तु एक दूसरे की आस्था को सम्मान देने के विचार से लोक देव संज्ञा में प्रवेश दिया है। राजस्थान में लोक देव की आराधना ने नई प्रवृत्ति का स्वरुप धारण किया। जिन महापुरुषों ने त्याग और आत्म बलिदान से अपनी मातृभूमि की सेवा की या नैतिक जीवन और लोकोप्रकार की वृत्ति अपनाई तो समाज ने उनको देवत्व का स्थान दिया और उत्तरोत्तर उनके पूजने तथा उनकी मनौती मानने की प्रथा चल पड़े। इनमें विश्वास रखने वाला अधिकांश में वह वर्ग था जो युद्ध प्रिय था या जिसके जीवन का आधार कृषि और हस्तकला था। ऐसे लोकप्रिय देवों में गोगाजी का नाम मुख्य है, गोगाजी ने आक्रमणकारियों से गौंए छुड़ा लाने में सफल रहे थे जिसके कारण आज भी राजस्थान में गाँव–गाँव में गोगाजी को पूजनीय माना जाता है। माह पद की कृष्णा नवमी को इनके उपासना स्थलों में मेले लगते हैं और उन्हें श्रद्धाजंली अर्पित की जाती है।

जाम्भोजी

जाम्भोजी का जन्म 1451 ई. में नागौर के निकट पीपासर गाँव में वशीयं परिवार में हुआ था। हरिचर्चा और सत्संग के प्रभाव से इनका स्थान भी उत्कृष्ट संतों में है वे केवल मनन शील ही नहीं वरन् उस युग की साम्प्रदायिक संकीर्णता कुप्रथाओं एवं कुरीतियों के प्रति जागरुक हैं, वे चाहते थे कि अंधविश्वास व नैतिक पतन के कारण सामाजिक दशा में बदलाव किया जाए और आत्म बोध के कारण कल्याण के मार्ग को अपनाया जाए। उनकी वारगी में सांस्कृतिक तत्वों पर बल दिया गया। जो भारतीय संस्कृति के मूल आधार है जैसे शील एवं भक्ति। जाम्भोजी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त उसकी सबद वारगी और उनका स्वयं का चरित्र मध्ययुगीन धर्म सुधारक प्रवृत्ति के बलवान अंग है।

दादू

धर्म सम्बन्धी स्वतंत्र विचारकों में दादू का भी नाम प्रमुख रुप से लिया जाता है इन्होंने जोधपुर, सिरोही, कल्याणपुर, सांभर, अजमेर, आमेर आदि स्थानों में प्राचीन परम्परा के अनुकूल भ्रमण कर अपने विचारों का प्रचार किया और अन्त में झील के किनारे हिन्दु, मुस्लिम, संस्कृति के समन्वय का भवन बनाया गया जिसमें उनकी कृतियाँ और चरण चिन्ह सुरक्षित हैं। दादू की ख्याति एक सन्त के रुप में दादू प्रवर्तक के रुप में है।

दादू द्वारा कविता में व्यक्ति किये गये विचारों का उनके शिष्यों ने संकलन किया जिनको दादू दयाल की वाणी तथा दादू दयाल का दूहा कहते हैं। वे ऐसे शास्त्रीय ज्ञान और तत्वज्ञान के महत्व को स्वीकार करते थे जिनको स्वानुभूति अनुभव और व्यावहारिकता की कसौटी पर परखा जा सकता है।

रामचरण जी

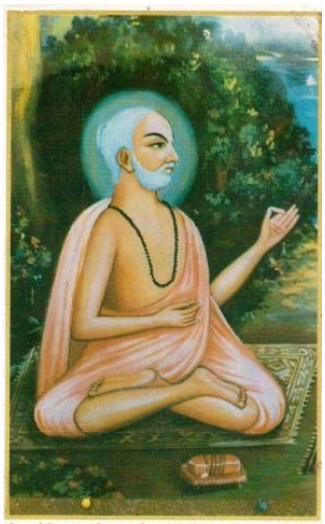

श्रीराम स्नेही सम्प्रदाय के आद्याचार्य स्वामीजी श्री 1008 श्री रामचरणजी महाराज

सबसे बड़े महत्व की बात यह रही है कि इन धर्म या पंथों में विविधता होते हुए भी सांस्कृतिक पहलुओं की परिपेक्ष्य में एकत्व की भावना सदैव रही है, त्रिमूर्तिया जो अजमेर और ओसियाँ से प्राप्त हुई है और जो सूर्य, विष्णु और शिव का सम्मिलित रुप है उस युग की धार्मिक सहिष्णुता का द्योतक है। जगत के हरिहर की मूर्ति के आयुधो में कमल दण्ड, परषु और सर्प को उत्कीरर्ण कर सर्वधर्म की भावना का समन्वय स्थापित किया गया है। इसी प्रकार राठौड़ एवं सिसोदियाओं के समय में भी अनेक ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जिनसे साम्प्रदायिक एकता सूचित होती है। विविध धर्मों की विभिन्नता ऊपरी है उनका आंतरिक सांस्कृतिक समन्वय वास्तविक है।

इस साम्प्रदायिकता एकता और सांस्कृतिक अविच्छिन्नता का स्वरुप मध्यकालीन समन्वय परक प्रयासों में भी मिलता है। जब सन्तों के अथक परिश्रम से जाति भेद, कर्मकाण्ड के पचड़े, धर्माचार्यों के विशेष अधिकार का अंधेरा समाप्त होता है और नैतिक आचरण, सदाचार, भक्ति साधना आदि का प्रकाश दैदीप्यमान होता है। अतः यदि हम इन सभी के सम्प्रदायों युग युगान्तर के इतिहास का परिवेक्षरण करें तो हम पाएँगे कि इन पंथों में एक आध्यात्मिक स्वर था जिसमें जिज्ञासु एवं भ्रान्तों के लिए शांति का मार्ग सुलभ हो सका।[7]

रम्मत

बीकानेर और जैसलमेर में लोक नाट्यों में ''रम्मत'' सामुदायिक स्वरुप को निभा रही है। रम्मत में संभागी सभी जाति के लोग होते हैं और सभी समुदाय के लोग इसमें रस लेते हैं।

ख्याल

ख्याल सम्पूर्ण राजस्थान में अपनी क्षेत्रीय रंगत के लिए बड़े लोकप्रिय हैं इनमें अनेक वीरों की कहानियाँ इस तरह समाविष्ट है कि वे वीर रस प्रधान होते हुए भी अन्य रसों को व्यक्त करने में पीछे नहीं रहते। जब इन ख्यालों को व्यावसायिक होने का अवसर मिला तो विषय एवं रंगत की विशेषता ने इन्हें राजस्थान के बहार भी लोकप्रिय अवसर दिया। ये ख्याल कभी–कभी धार्मिक कथानकों को गायन, वादन और संवाद से सम्मिलित कर इनकी उपयोगिता को बढ़ा देते हैं। धर्म और वीर रस प्रधान ख्यालों में एकरुपता तो नहीं दिखाई देती परन्तु ध्येय की दृष्टि से अपने–अपने क्षेत्र में इसमें विविधता आ जाती है फिर भी इनकी लोकप्रियता बनी रहती है। इन ख्यालों को क्षेत्रीय भाषाओं और स्थानीय परिवेश में रखे जाने से यह नहीं समझना चाहिए कि इनकी सांस्कृतिक इकाई में कोई व्यवधान है। ये ख्याल परम्परा के अंग है। अमरसिंह को ख्याल, रूठी रागी रो ख्याल, पदिनी रो ख्याल, पार्वती रो ख्याल आदि भिन्न–भिन्न रंगत प्रस्तुत करने पर भी सांस्कृतिक आधार में समान है।[8]

चारण साहित्य

चारण साहित्य का चारण जाति से नहीं चारण शैली से है जिसकी रचना मुख्यरुप से चारणों द्वारा चारणोत्तर जातियाँ– ब्राह्मण, राजपूत, दाढ़ी, ढोली, राव सेवक, मोतीसर आदि ने की थी। राजपूत युग के शौर्य तथा जनजीवन की झांकी इसी साहित्य की देन है। इसमें वीर तथा श्रृंगार रस की प्रधानता रही है और इसके प्रसंग युद्धों व शौर्य के व्याख्यानों पर आधारित है इसमें नारी जीवन और उसके त्याग और बलिदान को बड़े भावनात्मक वेग से वर्णित किया गया है। इसमें रावल मल्लीनाथ जी और उनके ज्येष्ठ पुत्र जगमल के वीर कृत्यों राव वीरमजी का इतिहास और अन्त में उनके पुत्र गोगदेव का अपने पिता की मृत्यु का बदला लेते हुए युद्ध में वीरगति को प्राप्त करना सविस्तार से वर्णित है। इसमें इतिहास की अत्यन्त मूल्यवान सामग्री सुरक्षित और भाषा ओजपूर्ण है। गाड़णा सिवदास कृत अंचलदास खींची की वचिनीका तुकान्त गद्य और पद्य की रचना है इनमें माडूँ के सुल्तान होसंग गोरी और गांगराण के राजा अंचलदास खींची के युद्ध तथा राजपूत स्त्रियों के जौहर का सजीव वर्णन है। पन्द्रहवीं शताब्दी के कवियों में पद्यनाम का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने कान्हडढे प्रबन्ध की रचना की। इसमें कान्हडदे चौहान का अलाउद्दीन में युद्धों का सजीव वर्णन है। साथ ही लेखक ने उस समय के राजस्थान की भौगोलिक सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति का सजीव वर्णन किया साहित्यिक दृष्टि से यह एक वर्णनात्मक सुन्दर कलाकृति है।

चन्द्रबरदाई के पृथ्वीराज रासों में पृथ्वीराज की वीरता एवं शौर्य का अच्छा वर्णन है इसका मूल लघु रुप पृथ्वीराज के निकट समय में लिखा गया और 17वीं सदी तक इसका विकास वृहत् रुप में ही गया इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राजस्थानी रासों में इसकी गणना सर्वोपरि है इसमें अनेक कथाओं और प्रसंगों को ऐसे रसों, छंदों, अलंकारी और उपमाओं से सजाया गया है कि सभी प्रसंग पाठक के सामने प्रत्यक्ष हो जाते हैं इसमें कई स्थल व नाम तथ्यहीन है तथा तिथियाँ अशुद्ध है परन्तु साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ वीर गाथा काल की अनमोल रचना है।

16वीं सदी के राजस्थानी साहित्य के चोटी के कवियों दुरसा आठा कानाम विशेष उल्लेखनीय है वह बीकानेर के राजा रायसिंह, सिरोही के राव सुलतान, जोधपुर के चन्द्रसेन तथा महाराणा प्रताप के युग का था।

अकबर के दरबार में इसका विशिष्ट स्थान था। दूसरा हिन्दु संस्कृति और शौर्य का प्रशंसक तथा भरतीय एकता का भक्त था। इन गुणों की ध्वनि, कवि की गीतों, छन्दों, कवित्त तथा दोहों में स्पष्ट है। दुरसा कवि होने के साथ कुशल योद्धा भी था।

बाँकीदास (1838–1890) आशिया शाखा का चारण था और जोधपुर के महाराजा भानसिंह का काव्य गुरु था बाँकीदास की ख्यात राजस्थानी इतिहास जानने का स्त्रोत ग्रन्थ है इनकी काव्य रचना के अनेक ग्रन्थ आज भी बड़े चाव से पढ़े जाते है।

वीर सतसई में तो कवि के प्रवर ने निष्क्रिय राजपूत नरेशों को स्वाधीनता संग्राम में संगठित हो ब्रिटिश सत्ता का मुकाबला करने के लिए प्रेरित किया इन दोनों ग्रन्थों में कवि का स्वाभिमान तथा स्वतंत्रता प्रेम झलकता है। इस प्रकार स्वातंत्रय प्रेम के धनी केसरसिंह बारहठ (1929–1998) ने 'चेतावरणी रा चुगटया' के दोहों में स्वाभिमानी महाराणा फतहसिंह को 1912 के दिल्ली दरबार में जाने से रोका था।

गद्य लेखकों में नैरणसी का नाम प्रमुख है उसमें नैरणसी ख्यात तथा परम नारी विगत लिखकर 17वीं सदी की राजनीतिक भौगोलिक सामाजिक व आर्थिक स्थिति का वर्णन कर मध्यकालीन इतिहास तथा गद्य साहित्य की बड़ी सेवा की है। गद्यों में ताम्रपत्र, पट्टे, वंशावलियाँ बात आदि भी अपना स्वतंत्र महत्व रखते हैं जिनमें न केवल भाषा की शैली तथा उसके विकास का पता चलता है।

स्वाधीनता, देश प्रेम तथा राजनीतिक अनेक वादों को लेकर गद्य और पद्यो में कृतियाँ प्रकाशित हो रही है। नई पीढ़ी को प्रेरणा देने के लिए रानी पद्मनी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, महाराणा प्रताप, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, पं. जवाहरलाल नेहरू आदि विषयों के द्वारा महान आत्माओं का चित्रण किया जा रहा है।[9]

सत्रहवीं शताबदी का कुशललाभ एक समर्थ कवि था इनकी समस्त रचनाएँ राजस्थानी में है। माघवानल चौपाई और ढोला मारू मारवणीरी चौपाई लोक कथानकों पर आधारित सरस काव्य है और राजस्थानी साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ है। ढोला मारू में तो नाटकीय गुणों का अच्छा समावेश है इसी युग के हीरकलश ने अपनी

कृतियाँ से निरन्तर साहित्य साधना का परिचय दिया है। हेमरत्नसूरि चौपाई का गरणमान्य कवि था। इसकी गोरा बादळी चौपाई प्रधानतः वीर रस और गौरगतः श्रृंगार की रचना है।[10]

इसी प्रकार जोधपुर शैली का सुन्दर उदाहरण 'दशहरा दरबार' जिसकी आकृतियों में भारी–भरकम, जिस पर गोल मांसलयुक्त चेहरा ठुड्डी बाहर की तरफ निकली हुई जैसी विशेषता है।

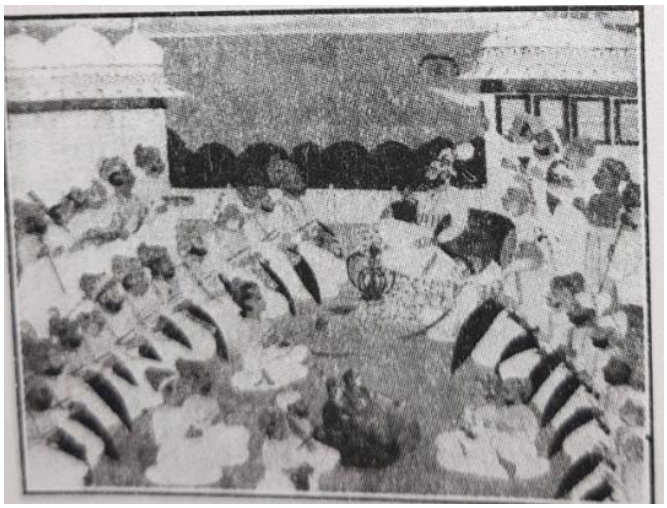

प्रमुख जोधपुर शैली में अति वीररस की जननी रण रचना की रसमय प्रतीती अश्वारोही राजपूत वीरों के मैने चित्र लिखे है।[11]

उद्देश्य

राजस्थान की मारवाड़ चित्र शैली में वीर रस से परिपूर्ण चित्रों में ऐतिहासिक सांस्कृतिक अध्ययन अधूरा था। इसी कमी को पूरा करने के लिए अध्ययन की आवश्यकता ध्यान में रखकर अध्ययन किया जा रहा है कि किस प्रकार शासकों लोकदेवों ने अपने शौर्य, साहस से वीरता का एक नया इतिहास रचा। जिसने समाज को वीरता, साहस, शौर्य का एक नया पाठ पढ़ाया। अतः कला का उद्देश्य ऐसे कुछ प्रश्नों को हल करने की कोशिश मात्र है।

निष्कर्ष

मारवाड़ चित्र शैली के ऐतिहासिक इतिहास वीर रस के चित्रों से परिपूर्ण है किन्तु आधुनिक समाज से विस्मृत होती इन कथा–कहानियों घटनाओं को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना ही मेरी कला का ध्येय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. जयसिंह नीरज– राजस्थानी चिकत्रला, पृ. 37
2. डॉ. अन्नापूर्णा शुक्ला – किशनगढ़ चित्र शैली, पृ. 21
3. डॉ. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 167, 168
4. डॉ. धर्मवीर वशिष्ठ – मारवाड़ की चित्रांकन परम्परा एवं चित्रकार, पृ. 27, 28, 29, 31
5. राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्णकाव्य, पृ. 96, 49, 50
6. डॉ. धर्मवीर वशिष्ठ – मारवाड़ की चित्रांकन परम्परा एवं चित्रकार, पृ. 132
7. डॉ. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 104, 105, 106, 109, 110, 111
8. डॉ. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 176, 177
9. डॉ. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 129, 130, 131
10. हीरालाल माहेश्वरी – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 250–270
11. वही, मारवाड़ शैली।

❖◆❖